प्रतिकूल परिवर्तन से संघवाद संकट में

वर्ष 2014 में भारतीय जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद से ही राज्यों की नीतियों और व्यय के अधिकार पर केंद्र की दखलदांजी बढ़ती जा रही है। इसके साथ ही बहुलवादी भारत के संघीय स्वरुप का आकार सिमटता जा रहा है। केंद्र की बढ़ती तानाशाही ने संघीय गठबंधन के विचार को ग्रस लिया है। केंद्र के इस रवैये पर यहाँ तीन स्तरों पर चर्चा की जा रही है -

केंद्र- राज्य पूंजी संबंध -

जहाँ अतीत में गठनबंधन सरकारों ने सुधार के बाद के भारत में क्षेत्रीय व्यवसायाओं के उदय को सक्षम किया, वहीं वर्तमान सरकार आर्थिक शक्ति को केंद्रीकृत करने की दिशा में काम कर रही है। यह स्पष्ट होता जा रहा है कि वर्तमान में व्यवसाय करने के लिए राजनीतिक गठजोड़ करना महत्वपूर्ण है। योग गुरू बाबा रामदेव के व्यवपारिक साम्राज्य का उदय इस बात का स्पष्ट संकेत है। पिछले कुछ वर्षों में दक्षिण भारत के व्यवपारिक समूहों का पतन तथा दूसरी ओर भाजपा के करीबी माने जाने वाले बड़े कारोबारी समूहों का विस्तार इसका दूसरा प्रमाण है।

एक ओर भारत ने रिजनल काम्प्रिहेन्सिव इकॉनॉमिक पार्टनरशिप को छोड़कर वैश्विक प्रतिस्पर्धा में कदम पीछे खींच लिए। वहीं दूसरी ओर जीएसटी और एक राष्ट्रीय बाजार के आह्वान से छोटे व्यवसायों को खत्म कर दिया गया। राज्यों के सीमागत प्रतिबंधों को हटाकर छोटे क्षेत्रीय व्यवसायियों का लाभ बहुत कम कर दिया गया है।

क्षेत्रीय दलों को खनन और रियल एस्टेट के जरिए राजनैतिक फंडिंग का लाभ मिलता है। परंतु केंद्र ने इन क्षेत्रों में केंद्रीय एजेंसी की घुसपैठ बनाकर इसे अपनी निगरानी में ले लिया है। क्षेत्रीय दलों की फंडिंग कम होने से वे भाजपा जैसे दल के विरूद्ध चुनाव में प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते हैं।

संस्थागत अतिक्रमण -

दूसरी चुनौती कार्यपालिका और विधायी आक्रमण के प्रयोग की है। केंद्रीय संस्थाएं, राज्य संस्थानों के नीतिगत तंत्र को लगातार कमजोर कर रही हैं। नियुक्तियां भी अछूती नहीं हैं। राज्यों को दरकिनार कर कल्याणकारी योजनाओं के लाभार्थियों को सीधे हस्तांतरण भी इसी दिशा में उठाया गया कदम है। राज्यों के जनप्रतिनिधियों से संपर्क किए बिना ही सचिवों और जिला कलेक्टरों से संपर्क साधा जा रहा है। इसका एक उदाहरण केंद्रीय शिक्षा मंत्री का सीधे शिक्षा सचिवों के साथ बैठक करना है। राज्यों में पदासीन राज्यपाल भाजपा के इस कार्य में मदद कर रहे हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक नींव पर प्रहार -

संघवाद की तीसरी और महत्वपूर्ण चुनौती सामाजिक- सांस्कृतिक नींव में निहित है। संघवाद के कानूनी-संवैधानिक पहलुओं के अलावा, सांस्कृतिक संस्थानों की क्षेत्रगत विभिन्नता ही भारतीय संघवाद के अस्तित्व को बनाए रखती है। वर्तमान में क्षेत्रीय पहचान और क्षेत्रीय सामाजिक- सांस्कृतिक प्रथाओं के वाहकों को अब हिन्दू धर्म का ही विस्तार माना जा रहा है। अभी तक जिस तमिल को वेद विरोधी परंपरा का प्रतीक माना जाता था, उसे हिन्दू का भाग माना जा रहा है। तमिल मुसलमानों-ईसाईयों को बाहरी कहा जा रहा है। असम, बंगाल और केरल आदि राज्यों में भी यही राजनैतिक खेल खेला जा रहा है।

संघीय संबंधों के इस क्षरण को अक्सर राज्यों की संवैधानिक शक्तियों को बहाल करने की अपील के माध्यम से रोकने का प्रयास किया जाता है। राजकोषीय संबंधों सहित संवैधानिक शक्तियां स्वाभाविक रूप से केन्द्र के प्रति पक्षपाती हैं , परन्तु भारत में संघवाद की डिग्री मुख्यत : दो घरों पर निर्भर करती है : केन्द्र में राजनीतिक गठबंधन की प्रकृति, और ऐसे गठबंधनों में राज्यों की भूमिका तथा क्षेत्रों की सांस्कृतिक विविधता। अत: एक ऐसे संघीय गठबंधन की जरूरत है, जो सांस्कृतिक और राजनीति के संदर्भ में बहुलवादी भारत के विचार को संरक्षित करने के लिए संघवाद के कानूनी-संवैधानिक पहलू से परे भी प्रयासरत रहे।

'द हिन्दू' में प्रकाशित कालियारसन ए और एम. विजयभास्कर के लेख पर आधारित। 3 जून, 2021